International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(2): 108-110

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 108-110
© 2015 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 29-11-2014
Accepted: 05-01-2015

अवधेश कुमार मिश्र
व्याख्याता (साहित्य), राजकीय विट्ठलनाथ सदाशिव पाठक आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
अवधेश कुमार मिश्र
व्याख्याता (साहित्य), राजकीय विट्ठलनाथ सदाशिव पाठक आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान, भारत

कालकौतुकम् काव्य का कौतुक चिन्तन

अवधेश कुमार मिश्र

सारांश
काल की विड़म्बना को लेकर कवि के मन में जो भाव उत्पन्न हुए, समाचार पत्र आदि में जो व्यंग्यचित्र मिले, उसके आधार पर श्लेषालंकार के माध्यम से व्यंग्यात्मक काव्य की रचना की गयी है। विश्वगुरु कहलाने वाले भारतवर्ष की, स्वतंत्रता के बाद जो स्थिति बनी उसका चित्रण कवि ने 169 श्लोकों मे किया है।
वस्तुतः समय के प्रभाव से ही प्राणी बलवान तथा निर्बल होता है। इस काल चक्र में पड़े किसी भी वस्तु, व्यक्ति एवं व्यवस्था का शाश्वत अस्तित्व नहीं होता है। इस काल की अज्ञातकलना को कोई जान भी नहीं पाता। बड़े–बड़े तपस्वी सिद्ध योगी किं वा अमरता पाने वाले देवता भी अपने को काल के ग्रास से नहीं बचा पाये। इस विषय में भतृहरि ने ठीक ही कहा है –

''काल इस भुवन पीठ पर पाशों से चौपड़ का खेल खेलता रहता है''

कूटशब्द: समाचार, अज्ञातकलना, व्यवस्था, शाश्वत, तपस्वी।

प्रस्तावना

समयएव करोति बलाबलं प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम्।
शरदि हंसरवाः परुषीकृतस्वरमयूरमयूरमणीयताम्।।[1]

इस धरा पर वेद व्यास जैसे मनीषी जिन्होंने पुराणों और महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थों की रचना की वे भी काल के प्रभाव से अर्थ और काम की प्रधानता को देखकर कहने लगे– ''अरे लोगों धर्मपूर्वक अर्थ और काम का उपभोग करो, परन्तु इस बात को कोई नहीं सुनता।''
अपने पुण्य–फल से स्वर्ग पाने वाले देवता भी काल के प्रभाव से उत्पन्न दैत्यों द्वारा स्वर्ग से निर्वासित कर दिये गये। बलि जैसे भक्त दैत्य को भी वामन के पदाघात से पाताल में जाना पड़ा। सूर्य–चन्द्र–वंशी बलवान राजा भी दूर से आये यवनों से पराजित हो गये। चिरकाल तक भारत पर शासन करने वाले यवनों को भी अंग्रेजों के अधीन होना पड़ा। अंग्रेजों को भी विना शस्त्र की लड़ाई में भारत छोड़कर जाना पड़ा।
स्वतन्त्रता संग्राम के नायक महात्मा गांधी ने कहा था कि ''मेरा शरीर खण्डित भले ही हो जाये परन्तु भारत को खण्डित नहीं होने दूंगा।'' परन्तु वही भारत गांधी जी के सामने ही खण्डित हो गया। काल के प्रभाव से जो प्रजातन्त्र विश्व में प्रारम्भ हुआ, उसका उदय भारत में भी हो गया। धर्म प्रधान वर्ण व्यवस्था भी खण्डित हो गयी। धर्म प्रधान विश्वगुरु कहलाने वाले भारत में भी विदेश से आई धर्म निरपेक्षता ने अपना पांव जमा लिया।
इस प्रकार अनन्त काल से चली आ रही नश्वरता की अनिवार्यता को भूलकर आधुनिक शासनलोलुप नेता अपने को मृत्यंजय मानते हुये, अपने अखण्ड साम्राज्य की स्वपनिल स्थापना के लिये उचित अनुचित मार्ग अपनाने लगे मतपत्र को मण्डन मानने वाले इस तन्त्र में योग्यायोग्य का विचार कैसे हो सकता है। अपूज्य पूज्य बन जाते है, पूजनीय ठुकरा दिये जाते है, इसका फल भी तो राष्ट्र को ही भोगना पड़ता है।
काल की लीला भी विचित्र होती है। विश्वगुरु का पद पाने वाले देश में आज मलेच्छों की बात प्रामाणिक मानी जाती है। अपने राष्ट्र के महापुरुषों के सद्वचनों पर ध्यान नहीं जाता है। भ्रष्टचार से धन संग्रह करने वाले परोपदेशकुशल नेताओं के मन में अपने असंख्य दोषों पर भी ग्लानि नहीं होती है।

इसी काल की विडम्बना को लेकर कवि के मन में जो भाव उत्पन्न हुये, समाचार पत्रों से जो व्यंग्य चित्र मिलें, शिशुपालवधम् एवं किरातार्जुनीयम् महाकाव्यों के कथानक से जो 'समय एव करोति बलाबलम्'' का भाव ग्रहण हुआ, इसी को आधार बनाकर इन्हीं से प्रेरणों लेकर ''कालकौतुकम्'' खण्डकाव्य लिखा। वस्तुतः उक्त सन्दर्भ ही कालकौतुकम् खण्ड काव्य का उपजीव्य है।

कवि ने एकादश शीर्षकों में अपने भावों को प्रकट किया है –

1. धर्मनिरपेक्षता कौतुकम्
2. नवोन्मेष कौतुकम्
3. नवता कौतुकम्
4. तन्त्र कौतुकम्
5. बलवान कुरसिका मोहः
6. दोष दर्शन निरपेक्षता
7. भग्न मनोरथाः
8. गृहिण्याः गृहवेदना
9. तरुकृतं लताकुत्सनम्
10. इन्द्रः प्रस्थं समीहते
11. लीलायितं सकलमम्बतवैव मान्ये

इस प्रकार इस खण्ड काव्य में 169 श्लोकों में काल के कौतुक को प्रस्तुत किया गया है। जिसका कथानक अधोलिखितानुसार प्रस्तुत है।

''लोकास्तोदयकारिणे भगवते कालायतस्मै नमः''।।[2]

संसार का उदय अस्त करने वाले ''काल'' को नमस्कार कर ग्रन्थ का आरम्भ करते कि काल का कौतुक देखिये जिसने द्यूत के बहाने पाण्डवों को द्वेतवन दिखा दिया, शास्त्र विशारद चाणक्य मन्त्री पद से हटा दिये गये, संविधान–ज्ञान–शून्य, कपट–निर्वाचित व्यक्ति मंत्री पद पीठिका पर आसीन हो गये। राजा धर्म विमुख हो गये, राष्ट्र विधर्मियों के हाथ में चला गया। जिन्हें सिंह समझकर राजपद पर बिढाया, वे श्रृगाल हो गये। देवता दानवों से दण्डित, स्वर्ग में विप्लव, बृहस्पति भयभीत, एवं मतिमान राजलक्ष्मी मद में मूर्छित हैं। बुद्धिमती अभिनेत्री भाग्यहीना ललिता जो कल मुख्यमन्त्री पद पर विराजमान थी, वह आज कारावास बन्दी है। फूलन देवी अपना यौवन दिखा रही है। नट–नायिकायें वन्दनीया हो गई है और कुलवधुएं निन्दनीयाँ हो गयी है। काल का कमाल इससे और अधिक क्या हो सकता है।

हमारे इस राष्ट्र में धर्म निरपेक्षता का एक नया कौतुक खड़ा हो गया है। जिससे यह धर्म भूमि धर्मनिरपेक्ष हो गयी है। इस नये तन्त्र में शासन कर्ता भी अपने ही कुलवृक्षों को काट रहें है। आज यशस्वनी–अयोध्या, प्रसिद्ध निर्मल–जलवाली सरयू भी वहीं है, फिर भी वह धर्मधरा अतिसंकट ग्रस्त है, संक्रमण काल में सारे नैतिक मूल्य अनैतिकता के भँवर में समाहित हो गये है, ज्ञान और शान्ति का मार्ग दुर्लभ हो गया है।

आज काव्य से छन्द हट गये है, ऋतुओं का तारुण्य लुप्त हो गया है, समुद्र का अगम्य गाम्भीर्य गम्य हो गया है तथा धरा का धैर्य धाराशायी हो गया है। नित्य नवोन्मेष से मायावी विष्णु भी विस्मित है। व्योम बिहारी विमानों से ग्रहमण्डल भी उद्विग्न है।

भौतिक वैभव की व्यापकता में आध्यात्मिक आनन्द अस्त हो गया है तथा वत्सोत्सवदर्शिनी पीनपयोधरा पयस्विनी गो के पालक अर्थ कमी हो गये है। आज विश्वधरा पर एक नया विचित्र वसन्त उदित हुआ है, जो प्रकृति को अपनी इच्छा के अनुसार नचाता रहता है। आज की वल्लरी वृक्ष की सहायता के बिना ही विकसित हो रही है। विटप शाखायें भी वसन्त–बहार के बिना ही फलीभूत हो रही है। पुष्पों के अभाव में लता प्रसन्न प्रतीत हो रही है तथा नवता के मोह में प्रकृति भी पुराने बन्धन तोड़ चुकी है। कृत्रिम कुसुमों में कुलीनता की सुगन्ध नहीं है, हतभाग्य भ्रमरों के भाग्य में मधुर मकरन्द नहीं है, चन्दन की सौरभ को भुजंगों ने रोक रखा है, कामिनियों के कटाक्ष भी अभिनय बुद्धि निबद्ध हो गया है। धनिकाराधित क्लबवाटिका में नवकालिकाओं का अभिसार समृद्ध हो रहा है। गुरु गरिमाहीन शिष्य शासनाधीन हो गये है।

प्रविष्टा नेदिष्टा अपि कुमति विष्टा रिपुकुलम्,
वदन्त्येते शिष्टा अपि विगत पुण्यानिवचनः।
दिशं नो जानीमो धनतिमि विष्टावयमपि,
समुद्धर्तुं भ्रष्टान् रचयनव नाकं भगवति।।[3]

हमारे समीप रहने वाले बन्धु भी कुमति के कारण शत्रुपक्ष में चले गये है जो हमें पुण्यहीन कह रहे है। अतः हे भगवति! अब तो हम पतितों के उद्धार हेतु तुम नये स्वर्ग की रचना करों।

कुछ लोग कहते है कि यह तो काल का कौतुक है लोग चाहे जैसा करते है, वे जो करते है, उन्हें करने दे, आप तो दोष दर्शन में निरपेक्ष भाव रखते हुये, इसे काल कौतुक समझें। मेरा मनोरथ भग्न हो गया है, हृदयगत आशाएं खण्डित हो गयी है, मन निराशा से व्याकुल है, घर में अन्न का कण नहीं है, अकेले वेलन से गृहस्थधर्म घन्य होने वाला नहीं है। हे भगवती ललिते! तेरी लीला बड़ी विचित्र है। प्याज जैसे बटुक भी इस युग में शाकपार्थिव हो गये है। पापी भी मत से पद पाकर पुण्यशील बन गये है, वे पूज्यपुरुषोत्तमों का मार्गदर्शन करते है। इस प्रकार मानवीय–उत्थान–पतन–परिवर्तन–परिवर्धन काल के भाल का अतिमाल है।

कालकौतुकम् नामक खण्डकाव्य 13 इकाईयों में विभक्त 167 श्लोकात्मक काव्य है, जो समय के प्रभाव को वर्णित करता है। इसमें विश्वगुरु कहलाने वाले भारत वर्ष की स्वतंत्रता के बाद जो स्थिति बनी उसका चित्रण है। इस काल में चक्र में पड़े किसी भी वस्तु, व्यक्ति एवं व्यवस्था का शाश्वत अस्तित्व नहीं रहता, कभी राजा कभी रंक, कभी निराशा कभी उमंग देखा गया है। काल के प्रभाव से जो प्रजातंत्र, विश्व में प्रारम्भ हुआ उसका उदय भारत में भी हो गया, धर्म प्रधान वर्ण व्यवस्था खत्म हो गयी, धर्म निरपेक्षता ने अपना जाजम बिछा लिया, जनबल सत्ता का प्रबल साधन बन गया। इसी काल की विडम्बना को लेकर कवि के मन में जो भाव उत्पन्न हुये अथवा समाचार पत्रों से व्यंग्य चित्र मिले, उसी के आधार पर काल कौतुकम् की सर्जना की है।

पं. दवे ने इस काव्य में इसी सभी रसों का मंजुल सन्निवेश किया है, किन्तु काल के कौतुक वर्णन में अद्भुतरस का तथा हास्य व्यंग्य का पुट अधिक विद्यमान है। करुण तथा भयानक रस स्थिति भी उद्धरणीय है। अद्भुतरस का स्थायी भाव 'विस्मय' देवता गन्धर्व तथा वर्ण पीत होता है। अलौकिक वस्तु आलम्बन–विभाव तथा उनके गुणों का वर्णन उद्दीपन विभाव होता है। स्तम्भ स्वेद, रोमांच, गद्गद् स्वर, सम्भ्रम और नेत्र विकासादि इसके अनुभाव होते है तथा वितर्क, आवेग भ्रान्ति, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव होते है।[4]

''कालकौतुकम्'' काव्य के प्रायः प्रसंगो में अद्भुतरस की अद्भुत अभिव्यक्ति होती है जो कि निम्नोक्त प्रतिनिधि पद्यों में धोतित है। ''तन्त्रकौतुकम्'' इकाई में नये तंत्र के कौतुक से विस्मित हुये कवि की उक्ति है–

चित्रं नूतन तन्त्रेऽस्मिन् वृद्धाः शिष्याः गुरुर्युवा।
अज्ञात भणिताः मौनं श्रृण्वन्ति विनताननाः।।
तनु प्रज्ञा जड़ी भूता तृष्णैषा तरुणी परम्।
वल्लरी वेष्टितैरंगैस्तारुण्यं दर्शयन्त्यमी।।[5]

आधुनिक जनतंत्र का विस्मयकरी वर्णन वाले उक्त श्लोक में गुरु का युवा होना, शिष्यों को वृद्ध होने, की विचित्रता आश्चर्य आश्चर्य भाव को प्रकट करता है। अतः यहीं आश्चर्य (विस्मय) स्थायीभाव है। काल परिवर्तन की ध्वनि आलम्बन है, अज्ञात भणिता, मौनं श्रृण्यन्ति उद्दीपन तथा विनतानना व्यभिचारी भाव है जिससे अद्भुत रस की पुष्टी हो रही है।

आज मूर्ख भी उपाधि पत्र पाकर विद्वानों में स्थान पा रहा है, दूरदर्शिका के गोद में बैठकर दुष्ट काव्य गुरुता पा लेता है, इस कलि की कला चातुरी बड़े से बड़े दोषों को दबा देती है, इस प्रकार कलिकाल की विलक्षणता को कवि ने अद्भुत रस के माध्यम से कुछ इस प्रकार कहा है –

प्राप्योपाधि दलं खलोऽपि भजते स्थानं बुधानां कुले।
काव्यं दुष्टमपि प्रयाति गुरुतां दूरेक्षणा भावितम्।।
अन्नं दुष्टमुपोषितं प्रकुरुते हृद्यं जडाशीतिका,
दोषानावृणुते गुरुनपि कलौकाचित् कला चातुरी।।[6]

काल का कौतुक देखो! जो सिंह मृगाधिपति कहलाता था, आज उसके गले में हड्डी अटक गयी है। चूहे इसके बाल काट रहे है, इसी भाव को कवि अद्भूत रस के माध्यम से कुछ इस प्रकार प्रकट किया है–

भावा! पश्यत काल कुण्ठित गतेः सिंहस्य दुर्दैष्टिकम्।
ख्यातोऽयं नु मृगाधिपोऽपि मृगयोः पांशगतः खिद्यते।।
कण्ठास्थस्य च चारु केसर कुलं चर्वन्त्यमी मूषकाः।
हा! कीदृग् हतकाल कौतुकमिदं वन्यैर्वने शोऽर्द्यते।।[7]

काल के प्रभाव से कोई भी अछूता नहीं है, कराल काल से पीड़ित होकर प्रकृति के रुदन में करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति है –

छिन्नास्तेऽकरुणैः सुशीतलघन छायाद्रुमाः सर्वतो,
ग्रामश्रीतिलका गवां शरणदाः केकीकुल प्रश्रयाः।
शीर्षाऽम्भोगुरु कुम्भ खिन्न वनिता क्लेशापहाः श्यामलाः
दृष्टैवैतत् प्रकृतिर्विरौति विकला काले करालेऽधुना।।[8]

हास्य व्यंग्य की अनुपम छटा विखरते हुये कवि कहते है कि –

द्वारे भोजन भिक्षुकाश्च सततं भोगाय भट्टाः स्थिताः,
बालास्ते न वंशवदाः सुविदिताः नो ते यशोवर्धकाः।
ख्याताः धर्म विरोधिनश्च सहजा नैषा शिवाराधना।
सत्कारं कुरु भद्र! सूनृत गिरागेहे त्वमेवाधुना।।[9]

राजनीति पर व्यंग्य करते हुये हास्य रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुयी है –

खादन्ति केदार भवं महिष्यो,
गावोऽथवा पीठगता मतगां।
पतन्तु कूपे ननु भक्षितारः,
किं तेन ते विप्रकृतं प्रजायते।।[10]

भयानक रस का भयंकर उदाहरण अश्वघाटी नामक नूतन छन्द में अभिव्यक्त है–

अम्ब! त्वदीय शशि बिम्वानने लगति जृम्भापि नाद्यभयदा,
सिंहासनं चलति हिंसाभियाद्रवति, कंसाभिशंकित मनः।
सूत्रं यमः कुटति सत्रेऽसुरो भ्रमति मित्रेषु नास्ति समता,
एभ्योऽव भीमकल–भेभ्यो रणे वन चरेभ्योऽद्यदेवि! ललिते।।[11]

इस प्रकार काल की आश्चर्य जनकता पर आधारित इस खण्ड काव्य में प्रायः स्थलों पर परिवर्तन के विस्मय कारक भावों की वर्णना के फलस्वरुप अंगी रस के रुप में अद्भुत रस को स्वीकार किया जा सकता है। अंगरुप में करुण, हास्य तथा भयानक रस का समावेश ग्रन्थ रसालता को द्योतित करता है। प्रजातन्त्र के नवतंत्र पर व्यंग्यात्मक शैली में लेखन कवि की काव्योचित शक्ति को प्रकट करता है, तथा पाठकों में विभिन्न कौतुकों को उत्पन्न करता है।

सन्दर्भ

1. शिशुपालवधम् – 6/44
2. कालकौतुकम् – पृ. सं. 192, श्लोक सं.–6
3. वहीं– पृ.सं.– 219 श्लोक 16
4. साहित्यदर्पण – तृ.परि.–कारिका सं. – 242–244
   अद्भूतो विस्मय स्थायी भावो गन्धर्व दैवतः।
   पीतवर्णो वस्तु लोकाति गमालम्बनं मतम्।।
   गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्यनं पुनः।
   स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमांच गद्गद्स्वर संभ्रगा।।
   तथा नेत्र विकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः।
   वितर्कावेग सम्भ्रान्ति हर्षाद्या व्यभिचारिणः।।
5. कालकौतुकम् – तन्त्रकौतुकम् – श्लोक सं. 6–8
6. कालकौतुकम् –''नवोन्मेष कौतुकम्'' – श्लोक सं. – 5
7. कालकौतुकम् – 'कालायतस्मैनमः' – श्लोक सं. – 25
8. कालकौतुकम् – ''नवोन्मेष कौतुकम्'' श्लोक सं. – 2
9. कालकौतुकम् – गृहिण्याः गृहवेदना–श्लोक सं. – 3
10. कालकौतुकम् – दोषदर्शन निरपेक्षस्य उक्तयः – श्लोक सं. – 2
11. कालकौतुकम् – गृहिण्याः गृहवेदना – श्लोक सं. – 4